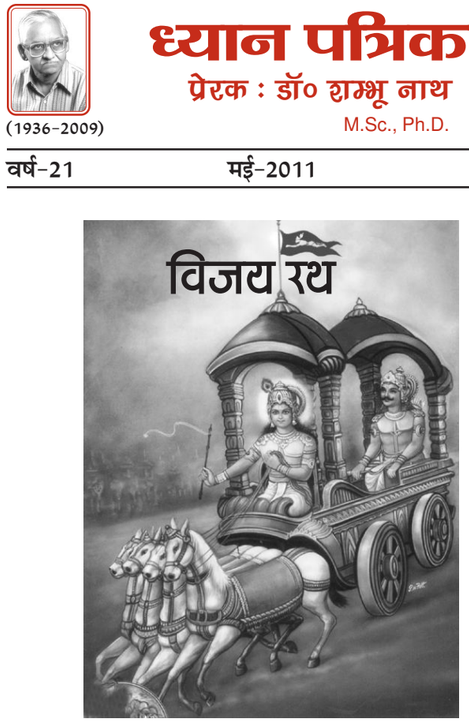





(1936-2009)

# ध्यान पत्रिका

प्रेरक : डॉ० शम्भू नाथ
M.Sc., Ph.D.

वर्ष-21 मई-2011 अंक-5

*प्रकाशक*

**ध्यान सत्संग सभा**

हिसार (हरियाणा), मो. : 09416164702, 09813294171


## विजय रथ

✍ **कर्नल शिवदान सिंह**

**महाभारत** के युद्ध में अर्जुन को श्रीकृष्ण सारथी के रूप में मिले तथा युद्ध में उन्होंने अर्जुन को अपनी सलाहों द्वारा विजयश्री दिलाई।

> **आज संसार में हर मनुष्य अपनी महाभारत खुद लड़ रहा है, परंतु उसके पास श्रीकृष्ण रूपी सारथी नहीं है।। ऐसे में हमें महापुरुषों द्वारा दिए निर्देशों को ध्यान में रख कर संसार रूपी युद्ध को जीतना चाहिए।**

मान्यता है कि नर (मन अथवा जीव) का रूप अर्जुन थे तथा नारायण (जीवात्मा) रूप में श्रीकृष्ण। इस संबंध के द्वारा भगवान ने हमें जीवन को सरलता से जीने के लिए गीता के रूप में ज्ञान का मंत्र दिया। इसके द्वारा जीवन की जटिलताओं का उत्तर आसानी से प्राप्त होता है।

श्रीराम का पूरा चरित्र मानव कल्याण के लिए सारथी का काम कर सकता है। राम ने रावण जैसे योद्धा को वानरों की सेना द्वारा परास्त किया । जब पहली बार राम रावण का सामना करने जा रहे थे: तब विभीषण उसकी शक्तियों को जानते हुए राम से कहते हैं कि आप पैदल ही शक्तिशाली रावण को, जो अत्यंत सुसज्जित रथ पर सवार हैं, कैसे जीतेंगे? भगवान ने मुस्कुराते हुए कहा कि विभीषण! रावण असली विजय रथ पर सवार नहीं है। बल्कि **असली विजय रथ अपनी ज्ञान व**

**कर्म रूपी इंद्रियों पर सवार संयम से मिलता है।** उन्होंने कहा कि मनुष्य का शौर्य और धैर्य उस **रथ के पहिए** हैं तथा सत्यता, शीलता **पताका** है। बल, विवेक, दम और परोपकार: ये चार उसके **घोड़े** हैं। जो क्षमा, दया और समता रूपी **डोरी** से रथ से जुड़े हैं। **ईश्वर का ध्यान ही सारथी है।** वैराग्य **ढाल** है और संतोष **तलवार**। दान **फरसा** है। बुद्धि **शक्ति** है। श्रेष्ठ विज्ञान **धनुष** है। निर्मल और अचल मन **तरकश** के समान है। नाम, यम और नियम -ये **बाण** हैं। गुरूमंत्र , पूजन **अभेद्य**

**कवच** है। **इसके समान दूसरा कोई विजय रथ नहीं है।**

**यदि मनुष्य इन नियमों द्वारा अपनी बुराइयों व अस्थिर मन को नियंत्रित कर ले तो संसार की कोई शक्ति उसे पराजित नहीं कर सकती।अपनी अनियंत्रित इंद्रियों द्वारा हम अनैतिक कार्य करते हैं। उनके फलस्वरूप रावण की तरह पराजित होते हैं। इसलिए हमें यह याद रखते हुए कि दूसरों पर जय से पहले: खुद पे जय करें। हमारे सारे क्लेशों व हताशाओं की सही चिकित्सा अपनी मनोस्थिति को बदलने में है। मनोस्थिति को बदलने के लिए हमें अपनी ज्ञानेन्द्रियों को वश में करना होगा। इस प्रकार हम स्वयं एक विजय रथ का निर्माण अपने लिए कर सकते हैं।**

यदि हम गीता का सार देखें तो पाएंगे कि यह ग्रंथ हमें निराशा से आशा की ओर तथा अवसाद से उल्लास की ओर ले जाने वाला है। इसमें सबसे बड़ा प्रश्न मृत्यु या देहावसान का था। भगवान ने कहा कि **जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों को छोड़कर नए वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार जीव पुराना शरीर छोड़कर नया शरीर धारण करता है।** देह को एक रथ के रूप में देखा गया है तथा जीव को रथी। महाभरत का युद्ध समाप्त होते ही श्रीकृष्ण अर्जुन के रथ को शिविर में लाते हैं। सामान्य दिनों के विपरीत भगवान आज अर्जुन को रथ से पहले उतरने के लिए कह रहें हैं। इस पर अर्जुन ने पूछा - 'हे केशव! आज ऐसा क्यों?' भगवान बोले-'अर्जुन! यह बाद में बताऊंगा। पहले तुम रथ से उतरो।' अर्जुन रथ से उतर जाते हैं। तथा उसके बाद भगवान ने घोड़ों को रथ से मुक्त किया। इसके बाद रथ जलने लगा। यह देखकर अर्जुन आश्चर्यचकित रह गया । इस पर भगवान ने कहा :- **अर्जुन! यह रथ तुम्हारे उद्देश्य की पूर्ति के लिए तुम्हें प्रदान किया था तथा महाभारत के युद्ध की अग्नि ने इसे बहुत पहले ही भस्म कर दिया था। परन्तु तुम्हारे उद्देश्य की पूर्ति के लिए मैंने इसे बचाकर रखा था। इसी प्रकार जीव से कर्मों का**



**हिसाब-किताब देने के लिए भगवान यह रथ रूपी शरीर प्रदान करते हैं। तथा इस रथ के रख रखाव की जिम्मेदारी जीव को सौंपते हैं। साथ ही जीव का जब संसार में कार्य समाप्त हो जाता है: तो भगवान इस रथ रूपी देह को समाप्त कर देते हैं।** ❑

# समुंद्र मन्थन

✍ **डा. शम्मू नाथ**

पुराण की कथाओं में लिखा है कि जब राक्षसगण ने इन्द्रलोक के देवताओं पर विजय प्राप्त की और इन्द्रलोक पर कब्जा कर लिया: उस समय सारे देवताओं में हाहाकार मचा। देवर्षि नारद के साथ वे शिवजी के सम्मुख पहुँचे और इन राक्षसों के अत्याचारों से अपने आपको बचाने हेतु शिवजी से कुछ करने की याचना की। तब शिवजी ने कहा कि जीवन की समस्त समस्याओं का समाधान समुंद्र मंथन में है। यह पूछने पर: कि समुंद्र मंथन कब और कैसे होगा? उन्होंने कहा कि विधि में इसका विधान बन चुका है। उन्होंने यह भी बताया कि समुंद्र का मंथन मदरांचल पर्वत के द्वारा होगा। इस पर्वत को मंथनी के रूप में एक नाग का प्रयोग होगा। मंथन के समय सबसे पहले विष निकला। सृष्टि को विष के दुष्प्रभाव से बचाने हेतु शिवजी स्वयं उठे और विष पी गए। इसलिए उनका कण्ठ नीला हो गया और वे नीलकण्ठ कहलाए। इसके पश्चात् एक के बाद एक मूल्यवान वस्तुएँ निकलीं और अन्त में अमृत का कलश निकला।

**समुंद्र मंथन:** असल में आत्म मंथन (Meditation) का प्रतीक है।

**सुमेरू (पर्वत):** दृढ़ता तथा वासु की कर्मठता का प्रतीक है।

**उपरोक्त कथा को अब हम इस रूप में देखेंगे कि यह सृष्टि तीन हिस्सों में बंटी हुई है:-**

**(1) इन्द्रिय-जगत (2) पराजगत और(3) परा से पराजगत।**

'' **परा से पराजगत**'' ही निर्गुण निराकार ब्रह्म सृष्टि के हर अस्तित्व का आधार है। पराजगत की समस्त शक्तियों का आधार परा से पराजगत है। **पराजगत की सबसे बड़ी शक्तियाँ:** ब्रह्मा, विष्णु और महेश के नाम से जानी जाती हैं। राक्षसगण ओर देवतागण, समस्त प्राणियों की वृत्तियों के रूप में: पराजगत की शक्तियाँ बनकर पराजगत में निवास करती हैं।

अब यह समझना आसान होगा कि यदि शिवजी देवतागणों को सम्बोधन कर रहे हैं तो उनका आशय 'पराजगत के समुंद्र' से ही रहा होगा ।

**पराजगत:** सूक्ष्म जगत होने के कारण भिन्न भिन्न प्रकार की शक्तियों का घर है। इस पराजगत में किसी भी स्थूल वस्तु की संभावना नहीं है। इस तरह यह समझना आसान है कि पराजगत: जो मात्र शक्तियों का जगत है, का मंथन (Meditation): मात्र मन द्वारा संभव है।

## मन की दो अवस्थएँ: शांत और अशांत

**अशांत मन:** पराजगत में मंथन शुरू कर देता है। दूसरे शब्दों में मंथनी का रूप धारण कर लेता है। मात्र मन का शान्त होना ही स्थिर होना है। दूसरे शब्दों में मन द्वारा पर्वत का रूप धारण कर लेना है।

**मन के पास विचरण करने के लिए दो जगत : इन्द्रिय जगत और पराजगत।**

इन दोनों जगतों से सम्बंन्धित, सृष्टि में दो प्रकार के सुख हैं: इन्द्रिय सुख और परासुख। हम अच्छी तरह से जानते हैं कि मन सुख का भूखा है। इसलिए ये दोनों सुख, मन को अपने अपने जगत की ओर खींचने में सक्षम हैं। इन्द्रिय सुख ओर ब्रह्म सुख के गुण भिन्न-भिन्न हैं।

रस्सी के दोनों सिरों के गुण समान होते है। लेकिन नाग के मुँह और पूंछ के गुण एक जैसे नहीं होते। इसलिए पुराण कथा में पर्वत को मंथनी और



एक नाग को रस्सी के रूप में इस्तेमाल किया जाएगा। कथानुसार नाग का मुँह राक्षस पकड़ेंगे और पूँछ देवतागण।

**इन्द्रिय सुख की वृत्तियां ही राक्षस हैं और परासुख की वृत्तियां ही देवतागण हैं।**

अपने जीवन को देखकर कोई भी व्यक्ति आसानी से समझ सकता है कि किसी का मन सदैव बहिर्मुखी रहे: यह असंभव है। जीवन में प्रयासपूर्ण कर्म: प्राणियों को थका देने वाला कर्म है। थकावट की उत्पत्ति के साथ साथ: आराम सम्बन्धित कर्म की इच्छाएँ जागृत होने लगती हैं। प्राणी थोड़ी देर के बाद आराम (Relax) का समय अवश्य निकालता है। साधकगण यह भी अच्छी तरह जानते हैं कि प्रयासपूर्ण कर्मों के समय मन बुद्धि की लगाम के अर्न्तगत होता है। आराम के समय जो भी विचार मन में उठते हैं: वे बुद्धि की लगाम से मुक्त होते हैं। इस तरह से यह समझना कितना आसान है कि मन जीवन में बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी होता ही रहता है। बुद्धि की लगाम से सम्बन्धित विचार मन को बहुर्मखी करते हैं। बुद्धि से मुक्त विचार: मन को अन्तर्मुखी करते है।

### परा की शक्ति का सुख: परासुख

जिसके जीवन में प्रयास है: पराजगत के मंथन से परे जीवन नहीं रह सकता। मंथन से परे तो केवल वह रह सकता है: जिसका मन ब्रह्म में लीन होने के कारण समस्याओं से विहीन हो। ऐसे व्यक्तियों के लिए ही कहा जा सकता है कि कुछ लोग बहुत लम्बे समय के लिए समाधि में रह सकते हैं। ऐसे लोगों का मन मंथानी के रूप में न होकर: पर्वत का रूप धारण कर लेता है। जिसका भी मन अशांत है: वह मन्थन से परे नहीं है। दूसरे शब्दों में उसके जीवन में पराजगत का मंथन: विधि के विधान द्वारा पिरोया हुआ है। इसी को पुराण की कथा में स्वयं शिवजी ने कहा है कि समुंद्र के मंथन का विधान बन चुका है। द्वैत जगत की शक्तियों का

स्वरूप इन्द्रिय सुख और परा जगत की शक्ति का स्वरूप परासुख होता है। ये शक्तियाँ ही मन को बहर्मुखी और अन्तर्मुखी करती हैं। इन्हीं शक्तियों को हमने राक्षसों और देवताओं की वृत्तियाँ बताया।

### समस्त राक्षसी वृतियों का कारण: ''अहं''

अहं के बिना जीवन की कल्पना भी संभव नहीं है। आज कलियुग का साधारण मनुष्य तीन अवस्थाओं में रहता है:-

(1) गहरी निद्रा, (2) स्वप्न और (3) जागृत अवस्था।

ऐसे मनुष्यों का अंहकार मन को हमेशा बहुर्मुखी करके जीवन को संवारने में विश्वास रखता है। ऐसे व्यक्तियों की वृत्तियां ही राक्षस वृत्तियाँ होती हैं। ऐसे व्यक्तियों के जीवन में प्रकृति: कोई ना कोई ऐसा समय लाती है, जब उसे विश्वास हो जाता है कि उसके द्वारा किए हुए प्रयासों से उसके जीवन की समस्याओं का हल असंभव है। मात्र ऐसे क्षणों में वह ईश्वर को याद करता है, दिव्य शक्ति को याद करता है और दिव्य शक्ति ऐसे व्याक्तियों में आन्तरिक चेतना की उत्पत्ति का रास्ता लाती है। इन रास्तों का अभ्यास करके धीरे धीरे वह आन्तरिक चेतना का विकास करता है। दूसरे शब्दों में उसका अहंकार अपने जीवन में प्रयासों को छोड़कर: प्रयासहीनता (Meditation) के अभ्यास का समय निकालने लगता है। इस तरह से यह देखना आसान है कि हर युग में समाज में दो तरह के व्यक्ति पाए जाते हैं:-

(1) एक वे जिनके पराजगत का मंथन करने में प्रकृति का योग रहता है, लेकिन उनके अपने अंहकार का योगदान नहीं रहता।

(2) दूसरे वे जिनके जीवन में प्रकृति के योगदान के साथ साथ उनका अपना अंहकार भी पराजगत का मंथन कराने में योगदान कर रहा है। मात्र दूसरी तरह के व्यक्ति का उत्थान



होने लगता है और समय बीतने के साथ-साथ उनका जीवन पहले से अच्छा होने लगता है।

पहली तरह के व्यक्तियों का पतन चलता ही रहता है: जब तक उनके जीवन में ऐसा क्षण ना आ जाए, जो उनके मन में यह विश्वास जगाए कि उनकी अपनी शक्तियाँ जीवन की समस्याओं का समाधन ढूंढने में सक्षम नहीं हैं। दूसरी तरह के व्यक्ति ही समाज में साधक कहलाते हैं।

### समस्या विहीन कर्म ही पूजा

साधना अर्थात् वे कर्म जो धीरे धीरे हमारे जीवन को समस्या विहीन करें: ही पूजा है। पराजगत की शक्तियों द्वारा जीवन को संवारने के रास्तों को हम पूजा कहते हैं। साधकगण प्रयासहीनता (Meditation) के अभ्यास का रास्ता बहुत दिनों से अपनाते आ रहे हैं। हम अच्छी तरह जानते हैं कि प्रयासहीनता के अभ्यास के समय मन: बार बार अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी होता है। जो इस अभ्यास में लगा हुआ है: उसका अंहकार भी अपने पराजगत के मंथन कराने में योगदान दे रहा है। प्रकृति तो सारे प्राणियों के जीवन में अपना योगदान देती ही है। इसलिए प्रयासहीनता (ध्यान) का अभ्यास करने वाले धीरे धीरे पहले से ज्यादा अच्छा जीवन व्यतीत करने में सफल होते हैं।

### मनुष्य का आन्तरिक जगत अनन्त पर्तो में बॅटा हुआ

सूक्ष्म परतों का मंथन करने के लिए तुलनात्मक दृष्टि से मन को और गहराई तक मंथन करना पड़ता है। पुराण में समुद्र मन्थन का जो दर्शन दर्शाया गया है, वह हमारे हर सूक्ष्म परत के लिए सत्य है। लेखक बताना चाहता है कि यदि साधक अपने जीवन में कभी महसूस करे कि उसके जीवन में विष का निकलना अब बन्द हो गया है। इसलिए अब केवल शुभ संकेतों का आगमन होना चाहिए, तो ऐसा अवश्य होगा। लेकिन उसे यह नहीं सोचना चाहिए कि जीवन में दुबारा विष निकलने की बात नहीं

रहेगी। ज्यों-ज्यों उसकी साधना अग्रसर होगी: उसका मन और गहरी परतों का मंथन करने में सक्षम होने लगेगा और समुंद्र मंथन में दर्शाया हुआ दर्शन हर सूक्षम पर्त के मंथन के साथ दुबारा होगा। दूसरे शब्दों में पूरे चक्र का आभास जीवन में न मालूम कितनी बार होगा। हर चक्र: जीवन को एक उच्च स्तर की अवस्था प्रदान करेगा। लेखक को यह अनुभव है कि जब साधना के कुछ वर्ष बीत जाते हैं और किसी विशेष सूक्ष्म परत के साथ मंथन का चक्र शुरू होता है: उस समय के निकलते हुए विष, दूसरे शब्दों में मन को अप्रिय लगने वाली घटनाओं को जीवन में देखकर साधक चकित हो जाता है। बार-बार उसके मन में सन्देह उठने लगता है कि कहीं ऐसा न हो कि उसका रास्ता ही गलत हो। ऐसा होने पर यदि किसी साधक को कोई अनुभवी शिक्षक न मिला: जिसके साथ संवाद करके साधक अपनी शंकाओं का समाधान कर सके, तो वह अध्यात्मिक रास्ता भी छोड़ सकता है। समाज में आध्यात्मिक शिक्षकों का यही कार्य है कि वे समय समय पर सत् चर्चाओं का आयोजन करते रहें और साघकगणों को मात्र अपना प्रवचन सुनाने की बजाय: उनके समीप का सम्पर्क स्थापित करके संवाद द्वारा उनकी शंकाओं का समाधन करते रहें। हर पर्त के मंथन द्वारा मनुष्य की अवस्था ऊपर उठती है। धीरे-धीरे वह अनुभव करेगा कि उसके जीवन में ऐसी घटनाएं तो आती हैं: जो दूसरों की निगाह में दुखदायी हैं, लेकिन ये घटनायें उच्च स्तर साधकों को दुखदायी बिल्कुल अनुभव नहीं होतीं।

**हर घटना का प्रभाव अलग अलग मनुष्यों पर अलग-अलग होता है। जिस पर प्रभाव जितना कम दुखदायी: उसकी अवस्था उतनी ही ऊंची।**

कुछ साधकगण यह उम्मीद करने लगते है कि जीवन में अप्रिय घटनाएँ नहीं घटनी चाहिएं। लेकिन ऐसा कोई आध्यात्मिक दर्शन नहीं दर्शाता।



सत्य यह है कि हमें जो इन्द्रियों से दिखाई पड़ता है: वे मात्र घटनाओं के चिन्ह हैं। घटनाओं का प्रभाव अलग-अलग व्यक्तियों पर देखना असंभव है। जितना गहरा प्रभाव राम के पिता राजा दशरथ पर हुआ, उतना गहरा प्रभाव किसी अन्य पर नहीं था। जीवात्मा के उत्थान के रास्ते पर सब कुछ कल्याणकारी ही होता है। पुराणों में भी हमेशा यही दिखाया जाता है। जीवन अप्रिय घटनाएँ नहीं जातीं। लेकिन हर अप्रिय घटना कल्याणकारी हो जाती है। विश्वामित्र का हरिशचन्द्र के विरुद्ध तरह-तरह का झूठ बोलना और दाँव पेंच खेलना:अंत में हरिशचन्द्र के लिए कल्याणकारी सिद्ध हुआ, क्योंकि उनका जीवन उत्थान के रास्ते पर था।

**बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी के बीच की लड़ाई ही: द्वैत जगता के अस्तित्व का आधार है।**

सारे साधकों से केवल इतना कहना चाहता हूं कि प्रयासहीनता (Meditation) के अभ्यास के रास्ते पर साधक के जीवन की हर अप्रिय घटना उसके किसी विशेष पर्त का विष है। इस विष के निकलने के पश्चात् ही प्रिय घटनाओं का आगमन सुनिश्चित है और मात्र इस रास्ते द्वारा ही वह ब्रह्म की ओर अग्रसर हो सकेगा।

❊ ❊ ❊

## ध्यान साधना: सब से बड़ी सेवा

✍ श्री राकेश गर्ग, 359-डिफेंस कालोनी, हिसार

हर व्यक्ति मन की खुशी के लिए तरह-तरह के साधनों को इक्ट्ठा करता है। ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती है, व्यक्ति अनुभव करता है: शायद कहीं कोई चूक हुई अथवा गलती हो गई, जिस के कारण खुशी गायब होती जा रही है। वह असमंजस में है कि जीवन को बर्बाद करने के लिए उस ने स्वयं अपने पैर पर कुल्हाड़ी मार ली। गलती क्या हो गई? इस का उत्तर

11

बौद्धिक तर्क वितर्क के आधार पर नहीं मिलता। कुछ ऐसे भाग्यशाली भी हैं: जिन्हें ध्यान की शिक्षा मिल जाती है और ध्यान का अभ्यास करते करते उन्हें यह अहसास होने लगता है कि मन का आन्तरिक जगत में विचरण ही अत्यन्त सुखदायी है। इस कारण उन का ज्यादातर समय आन्तरिक आनन्द (Internal Bliss) में बीतने लगता है और यह आनन्द उन के मन को खूश रखने में मददगार है। ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती है: साधक की खुशी बढ़ती जाती है। तब वह महसूस करता है कि उसका जन्म सफल हो गया। इस तरह वह हर समय सन्तुष्ट रहता है। होनी की शक्ति, मन में परमात्मा का आभास और ध्यान के नियमित अभ्यास द्वारा: आनन्द इतना उभर जाता है कि उसका मन अब बाहर के सुख को छोड़ कर आन्तरिक सुख की ओर बढ़ने लगता है। फल स्वरूप उस व्यक्ति का मन चौबीसों घंटे खुशी की अवस्था में रहता है और वह कभी विचलित नहीं होता ।

जैस नील की बाल्टी से कपड़ा निकाल कर धूप में डालने पर कुछ रंग उड़कर वातावरण में चला जाता है। ऐसे ही ध्यान के समय अन्दर से ईश्वर के सत् चित् आनन्द को लाकर कुछ भाग अपने अन्दर रख लेता है। फिर क्रियाओं के समय कुछ सत्य का आनन्द वातावरण में फैल जाता है। यह भगवान, समाज, देवता और सृष्टि की सबसे बड़ी सेवा है।

ध्यान (Meditation) सब से ऊँची और सब कुछ प्राप्त कराने वाली साधना होगी। सभी साधक ध्यान साधना करके अपने अन्दर से परमात्मा को ढूंढते और पाते हैं। डॉ० शंभुनाथ जी ने हमें यही रास्ता सिखाया है। महापुरूषों और भक्तों की प्रेरणा हमें लक्ष्य प्राप्ति में सहायक होती है। ध्यान साधना द्वारा हमारा पूरा परिवार सत्संगी बन गया है। हम सभी डॉ० शंभुनाथ जी के बहुत आभारी हैं, जिन्होंने हमें यह सद्मार्ग दिखलाया है।

12

## बाल्यावस्था में आध्यात्मिक शिक्षा आवश्यक क्यों ?

**डा. जगदीश गांधी, संस्थापक-प्रबन्धक,**
**सिटी मोन्टेसरी स्कूल, लखनऊ**

**आध्यात्मिक शिक्षाएं: एक जैसी** - विद्यालय द्वारा बालकों को बाल्यावस्था से ही आध्यात्मिक शिक्षा दी जानी चाहिए। सभी धर्मो तथा आध्यात्मिक शिक्षा का मूलभूत उद्देश्य: मानव जाति की सुरक्षा तथा उनके बीच एकता व प्रेम विकसित करके एकताबद्ध आध्यात्मिक सभ्यता स्थापित करना है। **सभी धर्मों की मूल आध्यात्मिक शिक्षायें एक जैसी हैं।** अलग-अलग पूजा स्थलों से यह अज्ञान संसार में फैल गया है कि परमात्मा एक नही: अनेक हैं।

**एक कर दे हृदय: अपने सेवकों की हे प्रभु।**
**निज महान उद्देश्य: कर प्रगट उन पर हे प्रभु॥**

**पवित्र ग्रन्थों में त्रुटिरहित ज्ञान संकलित:**- युग-युग में अवतरित दैवीय शिक्षक तथा उनकी शिक्षायें विश्व के विभिन्न स्थानों में अवतरित होती रही हैं। परमात्मा की ओर से समय-समय पर अपने अवतारों द्वारा सभी महान पवित्र ग्रन्थों में (त्रुटिरहित तथा बुद्धिमत्ता से ओतप्रोत) ज्ञान संकलित होता रहा है: जो उस युग की आवश्यकता के अनुसार मार्गदर्शन देकर मानव जाति के बन्द मस्तिष्क के दरवाजों को खेलकर: मानवीय समस्याओं का हल देता रहा है।

**बच्चों को पूर्णतया गुणात्मक व्यक्ति बनाने का लक्ष्य: विद्यालय का**-ब्रह्माण्ड़ तथा सम्पूर्ण आध्यात्मिक ज्ञान को देने वाला सर्व शक्तिमान, स्वत: उत्पन्न तथा अदृश्य रचनाकार: अपनी शिक्षाओं को सिलसिलेवार श्रृंखला में युग-युग में अवतरित दैवीय शिक्षकों के माध्यम से मानव जाति को भेजता है। हमारे मार्गदर्शन एवं कल्याण के लिए परमपिता परमात्मा द्वारा भेजे गये अवतारों ने पवित्र पुस्तकों के माध्यम से (परमात्मा से लाकर) हमें दिव्य ज्ञान दिये हैं। अत:परमात्मा द्वारा भेजे गये ये दिव्य

ज्ञान: हमें बच्चों को गहराई से समझने एवं उन पर चलने के लिए प्रेरित करना है, ताकि वे पूर्णतया गुणात्मक व्यक्ति बन सकें।

**विस्तृत एवं प्रभावशाली शिक्षा पद्धति का उद्देश्य है: कल्याण**– एक पूर्ण गुणात्मक व्यक्ति ही पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धक, परिवार का अच्छा मुखिया, व्यवसाय या कारखाने का अच्छा प्रबन्धक, विश्व का अच्छा नेता अथवा प्रशासक बन सकता है। विस्तृत एवं प्रभावशाली शिक्षा पद्धति का उद्देश्य: बच्चों को विश्वस्तरीय कैरियर या व्यवसाय अपनाने व प्रतिष्ठित पद ग्रहण करने हेतु तैयार करना है, जहां वे जनहित एवं विश्व कल्याण के बड़े बड़े निर्णय ले सकें।

**सभी पवित्र ग्रन्थ हमें एकता, शांति व प्रेम की सीख देते हैं:**–छात्रों को मूलभूत आध्यात्मिक शिक्षाओं को ग्रहण करने के लिए प्रेरित करना चाहिए। यह बच्चों को सभी धर्मों का आदर करने की सीख देने में सहायता करता है। साथ ही धर्मों के बीच समझदारी से भरा संवाद स्थापित करता है। यह स्वस्थ वातावरण: बच्चों को ऐसे सच्चे विश्व नागरिक के रूप में विकसित होने में सहायता करता है, जो विश्व एकता स्थापित करने के लिए संकल्पित हों।

**परम आत्मा से जुड़कर: हमारी जीवात्मा प्रकाशित होती है**– मनुष्य का कनेक्शन परम आत्मा (परमात्मा) के पॉवर हाउस रूपी बक्से से जुड़कर: जीवात्मा प्रकाशित होती है। यह ज्ञान बालक को विचारवान, बुद्धिमान, ईश्वर भक्त, अच्छा, टोटल क्वालिटी पर्सन तथा, टोटल क्वालिटी मैनेजर बनाता है। बालक देवदूत की तरह बन जाता है। एक अच्छा मनुष्य: मानव जाति का वरदान है। देवदूत के समान अच्छा मनुष्य: मानव समाज के लिए वरदान है।

**परमात्मा से कटकर व्यक्ति: पूर्णतया गुणरहित व्यक्ति**– सभी धर्मों के पॉवर हाउस रूपी ज्ञान के बक्से से सम्पर्क टूट जाने से: जीवन अज्ञान रूपी अंधेरे से घिर जाता है। यह अज्ञान मनुष्य को, विचाहीन, मूर्ख, पशु



के समान हिंसक, बुरा, टोटल डिफेक्टिव पर्सन तथा, टोटल डिफेक्टिव मैनेजर बना देता है। वह पशु के समान अमानवीय बन जाता है। ऐसा मनुष्य पूर्णतया अयोग्य और समाज द्वारा अस्वीकृत होता है।

**उद्देश्यविहीन शिक्षा का फल: शैतानी सभ्यता**– प्रत्येक बालक के तीन क्लास रूम तथा विद्यालय होते हैं: उसका घर, उसका स्कूल तथा हमारा समाज। मानव और मानव जाति का भविष्य इन्हीं तीन क्लास रूमों में गढ़ा जाता है। संसार में व्याप्त: क्रूरता, कानून विहीनता, अन्याय, आपसी दूरियाँ एवं निरन्तर बढ़ती जा रही शैतानी सभ्यता, इन्हीं तीनों क्लासरूमों में दी जा रही उद्देश्यविहीन शिक्षा के कारण है। स्कूल को छोड़कर: अन्य कोई भी संस्था संसार में व्याप्त, इन समस्याओं का हल देने में सक्षम नहीं है। अत: शिक्षकों और अभिभावकों को विद्यालय और घर में प्रेरणादयी वातावरण बनाने के लिये अपने व्यवहार के द्वारा बालक के लिए प्रोत्साहन का वातावरण बनाकर, प्रत्येक बालक को सामाजिक परिवर्तन का स्वप्रेरित माध्यम बनाना चाहिये। विद्यालय: समाज के प्रकाश का केन्द्र होता है।

**सभी धर्मों की मूल आध्यात्मिक शिक्षायं : एक जैसी**– विद्यालय को समाज के प्रकाश का स्रोत बनाने के लिए: टीचर्स को नैतिकता के पोषक, चरित्र के निर्माता तथा संस्कृति के संरक्षक की अपनी पारम्परिक भूमिका को निभाना चाहिए। विद्यालय को समाज के प्रकाश का केन्द्र बनाने के लिए: भौतिक ज्ञान, धर्म, कानून तथा न्याय की संतुलित शिक्षा अपने छात्रों को देनी चाहिए। विद्यालय को धरती पर: क्रूरूता, आपसी दूरियाँ, अमानवीयता, कानून विहीनता, अन्याय और निरन्तर बढ़ती जा रही शैतानी सभ्यता के स्थान पर, आध्यात्मिक सभ्यता स्थापित करने का प्रयास, अपनी उद्देश्यपूर्ण एवं संतुलित शिक्षा के द्वारा करना चाहिए। साथ ही समाज के प्रकाश के केन्द्र के रूप में: अपने छात्रों, उनके अभिभावकों तथा समाज में धर्म, शिक्षा, कानून और न्याय की शिक्षा को बढ़ावा देना

चाहिए। धर्म, शिक्षा, कानून और न्याय का लक्ष्य धरती पर आध्यात्मिक सभ्यता की स्थापना करना है। समाज को विनाश से बचाने के लिए समाज में आध्यात्मिक सभ्यता स्थापित करने की आवश्यकता है।

❊ ❊ ❊

## ध्यान माला

✍ **श्री कुबेर प्रसाद 'गुप्त कबीर'**

**दोहा-16 : मानव योनि अमोल है, मेटे दुःख समूल।**
**अद्वैत चेतना प्राप्त कर, छोड़ें अच्छत दुकूल॥**

अनन्त योनियों में केवल मनुष्य योनि में ही जीवात्मा के अनन्त स्तर तक उत्थान की संभावना है। इसीलिये मानव योनि अमूल्य है, जिसे प्राप्त करने की इच्छा सभी योनियां करती हैं। 'मानस' अनुसार :-

**'नर तनु सम नहिं कवनिउ देही।**
**जीव-चराचर जाचत जेही॥'**

**अब प्रश्न यह उठता है कि मनुष्य योनि में उच्चतम उत्थान की संभावना कैसे है?** मनुष्य भी अन्य शरीरधारियों (प्राणियों) की भांति घोर निद्रा, स्वप्न और जागृति अवस्था की तीन चेतनाएं लेकर जन्म लेता है। लेकिन अन्य प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य की बाह्य शारीरिक बनावट एवं अन्दर की संरचना कुछ इस प्रकार की (अन्य प्राणियों से भिन्न) होती है: जिससे वह ध्यान की साधना कर सके और उक्त (निद्रा, स्वप्न और जागृति की) तीन जागों (चेतनाओं) से उच्चतर स्तर की भावातीत, ब्राह्मी, ईश्वरीय और अद्वैत चेतना को प्राप्त करने की क्षमता प्राप्त कर सके। मनुष्य के लिये अद्वैत चेतना प्राप्त करना अन्तिम अवस्था है। इसमें उसे सब कुछ तत्काल बिना कुछ किये (क्रियाओं और पदार्थों की सहायता के बिना) प्राप्त रहता है। इसीलिये मानव योनि अमूल्य है।

**अछत** (अक्षत) का अर्थ है: जिसमें कोई टूट-फूट न हो।

**दुकूल** (कपड़ा) शब्द अध्यात्म में शरीर के लिये प्रयोग किया जाता है। जिसने जन्म लिया है, अर्थात् जिसके भी जीवन का आरम्भ शरीर के साथ हुआ है: उसका शरीर, प्रकृति के नियमानुसार, कभी न कभी नष्ट हो ही जाएगा। परन्तु **अद्वैत चेतना प्राप्त व्यक्ति अपना शरीर अनन्त काल तक बनाये रख सकता है। इसलिये वह शरीर टूट-फूट से रहित कार्य करने में पूर्ण सक्षम रहता है। इसी बात को संत कबीरदास ने अपने बारे में कहा है - 'जैसी की तैसी: धर दीनी चदरिया।'** ❑

**नोट :-** 1. प्रत्येक रविवार को बुधला सन्त मन्दिर नज़दीक बस स्टैण्ड, हिसार में पारिवारिक सत्संग शाम को 4 बजे से 6 बजे तक होता है। आप सभी सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

2. ध्यान सम्बन्धी अपने अनुभव, लेख, आलोचना (Comments), अनुभूतियां, प्रश्नोत्तर, शंका-समाधान इत्यादि: इस पते पर भेज सकते हैं :-

**-सुरेश कुमार गुप्ता**
1618, अर्बन एस्टेट-II,
पुष्पा कम्पलैक्स के पीछे, हिसार-125005

PRINTED MATTER